

**कविता****बेच दिया है जिन लोगों ने.....**

डॉ. रामवीर

बेच दिया है जिन लोगों ने  
सस्ते में ईमान,  
राजनीति की खाल बैठे  
वे ही आज दुकान।

पांच साल में कैसे बन गए  
इतने बड़े मकान,  
यूं तो जनता जान जाती है  
यह सब कानों कान।

हिन्दू को समझाया जाता  
नौचा है मुसलमान,  
मुसलमान पहले ही कहता  
हिन्दू को बेइमान।

हर चुनाव में जमा घटा और  
गणा भाग यूं करते,  
बाईं हुक या बाईं करक  
धूत ही जीता करते।

अब तो लगता प्रजातन्त्र का  
है भविष्य ही धमिल,  
किस को दोषा माँझे इस में  
सारे दल ही शामिल।

हम तो पहले भी रोते थे  
अब भी रो ही रहे,  
कोई तो सुनने वाला हो  
किस से दुखड़ा कहें।

कवि के मन में अभी तलक भी  
जीवित आशावाद,  
वाद विवाद जब थम जाएगा  
तब होगा संवाद।

**कुछ शानदार पढ़ने का मन है तो  
यह कविता पढ़ लीजिये.....**

(युवा कवि सबीर हका ईरान के करमानशाह में सन 1986 में पैदा हुए। अब तेहरान शहर में किराये के कमरे में रहते हैं।)

अपनी हालत को देखते हुए ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह खड़ा करते हुए लिखा है....

मैं ईश्वर का दोस्त नहीं हूँ

इसका सिर्फ एक ही कारण है

जिसकी जड़ें बहुत पुराने अतीत में हैं

जब छह लोगों का हमारा परिवार

एक तंग कमरे में रहता था

तब ईश्वर के पास बहुत बड़ा मकान

था

जिसमें वह अकेले ही रहता था

सबीर हका ने दुनियाँ भर की

व्यवस्थाओं पर भी सवाल खड़ा करते हुए

लिखा....

मैं पूरी दुनिया को अपना कह सकता हूँ

दुनिया के हर देश को अपना कह सकता हूँ

मैं आसमान को भी अपना कह सकता हूँ

इस ब्रह्मांड की हरेक चीज़ को भी

लेकिन तेहरान के इस बिना खिड़की

वाले

किराए के कमरे को अपना नहीं कह सकता,

मैं इसे अपना घर नहीं कह सकता

जब श्रमिक स्पर्धा में कविता का प्रथम

पुरस्कार मिला तो इंटरव्यू देते समय पत्रकार

ने पूछा कि आप थके हुए लग रहे हो तो जबाब में कहा मैं थका हुआ हूँ बेहद थका हुआ, मैं पैदा होने से पहले से ही थका हुआ हूँ। मेरी माँ मुझे अपने गर्भ में पालते हुए मजदूरी करती थी, मैं तब से ही एक मजदूर हूँ। मैं अपनी माँ की थकान महसूस कर सकता हूँ उसकी थकान अब भी मेरे जिसमें है।

सबीर हका ने आगे कहा कि कविताओं से पेट नहीं भरता। पेट भरने के लिए हाथ तोड़ मेहनत करनी पड़ती है। मैं अपने कमरे के कोने में यह पुरस्कार रख दूंगा और ईंट-रोड़ा उठाने निकल जाऊंगा। पड़ोसी मजदूरों के बच्चे टूटी खिड़की से इस पुरस्कार को देखेंगे।

एक गरीब के लिए एक मजदूर के लिए साहित्य लेखन बहुत ही मुश्किल कार्य होता है दो वक्त की रोटी के जुगा ? मैं ही जीवन संघर्ष चलता रहता है। अगर इसके बीच भी लिखना/बोलना शुरू कर दे तो तमाम राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक ताकतें दायरा दिखाने लगती हैं कि तुझ गरीब की इतनी हिम्मत!

सबीर हका ने मजदूरों की मौत को सबसे सस्ती बताते हुए लिखा है....

क्या आपने कभी शहतूत देखा है!

जहां गिरता है, उतनी ज़मीन पर

उसके लाल रस का धब्बा पड़ जाता

है.

गिरने से ज्यादा पीड़ादायी कुछ नहीं

मैंने कितने मजदूरों को देखा है

इमारतों से गिरते हुए,

गिरकर शहतूत बन जाते हुए!

सबीर हका लिखते हैं कि पूरी जिंदगी मैंने महसूस किया है कि मौत भी जिंदगी का हिस्सा है फिर भी मरने से डर लगता है कि कहीं दूसरी दुनियाँ में भी मजदूर न बन जाऊं। गरीबी के दुष्कर से बाहर निकलना अपने आप में जीवन की मुक्ति है अन्यथा हका जैसा युवा जो ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार कर देता है वो भी सदा मजदूर बने रहने से खोफजदा रहता है।

एक गरीब का ,एक मजदूर का दर्द खुद मजदूरी करने वाले सबीर हका जैसे लोग ही व्यक्त कर सकते हैं। हका लिखते हैं कि मैं चाहकर भी अपने कैरियर का चुनाव नहीं कर सकता। मैं बैंककर्मी नहीं बन सकता, मैं इन्स्पेक्टर नहीं बन सकता। मेरा पिता मजदूर थे। मेरी माँ मजदूर थी। किराये का मकान था। पिता के गुजरने के बाद मजदूर बनकर घर संभालना मजदूर बनने का जरूरी आधार बन गया।

हर इंसान के अपने सपने होते हैं वे सपनों को पूरा करने की चाहतें दिलों में सपेटे रोज जिंदगी के संघर्ष में गतिमान रहता है। सबीर ने लिखा कि जब मर जाऊंगा तो सारी किताबें कफन में बांधकर कब्र में ले जाऊंगा। सिगरेट जलाऊंगा और कस खींचते हुए रोकंगा उन सपनों के लिए जो जिंदगी में प्राप्त न हो सके एक डर फिर भी रहेगा कि किसी सुबह कोई कंधा झँझोड़ कर न कह दें अब सबीर उठ!काम पर चलते हैं!

-प्रेमसिंह सियाग

**कौन भरता है हमारे दिमाग़ों में हिंदू-मुसलमान**

दियर हिंदू भाइयों,  
एक बहुत झूठी और आम बात है।

मुझे दुःख है कि ये बात झूठ होते हुए भी आम है।

"मुस्लिम कितने भी सगे हों, आखिर में अपना रंग दिखा ही देते हैं।" ये वो अल्फाज़ हैं जो हम में से ज्यादातर ने कहीं ना कहीं अपने किसी खास से सुना है। ये 'खास' अक्सर घर या खानादान के बड़े (महज़ उपर में) होते थे। तो अमूमन हर बात की तरह ही हम इनकी इस बात पर भी ऐतबार करते चले गए। अब जिन्दगी के किसी मोड़ पर या किसी लाम्हे पर हमारी किसी मुस्लिम यार से दोस्ती टूटी तो हमें कहीं गयी वो बात सब महसूस हुई। या ऐसा कुछ नहीं भी हुआ और हमने कभी ऐसा फ़ौल भी नहीं किया तो किसी बड़े ने अपनी या किसी और की सुनी सुनाई कहानी से हमें ऐसा फ़ौल करने पर मजबूर कर दिया।

दोस्त! तुम ध्यान से सोचोगे तो तुम्हें समझ आएगा कि स्कूल, मोहल्ले और कोंचिंग वगैरह सब को मिला कर भी तुम्हारी स्कूलिंग के दौर में तुम्हारे बामुश्किल दी चार मुसलिम दोस्त होते थे, उनमें से अगर किसी एक से भी आगे चल कर तुम्हारा झगड़ा या मन मुटाब होता है तो तुम्हारे दिमाग में वही एक लाइन क्लिक करती है। तुम्हें तुरंत लगता है कि सचमुच आखिर में ये रग दिखा ही देते हैं। तुम अपने इस एक व्यक्तिगत अनुभव को जनरलाइज़ कर देते हो। क्योंकि तुम्हारे



कुछ दोस्त ही नहीं हैं। इसके पीछे कारण वही हैं जो तमाम हिंदू दोस्तों से थोड़ा अलग हो जाने कि वजह हैं। अगर तुम्हारी ही तरह भारी भरकम लफ़ज़ों में कहूँ तो कई हिंदू दोस्तों से धोखा मिला और इसलिए उनसे आगे नहीं बन पाई। पर मैंने अपने उस व्यक्तिगत अनुभव को जनरलाइज़ नहीं किया। मैंने कभी नहीं कहा कि हिंदू होते ही ऐसे हैं। मेरे जो कुछ मुसलिम दोस्त रहे उनमें एक पक्का वाला दोस्त रहा शाहरुख। अब भी है।

दोस्ती को सात साल होने जा रहे हैं, कभी ऐसी कोई बात नहीं आई। मैं जिन लोगों को प्यार से भइया बोलता हूँ उनमें

तमाम लोग मुस्लिम हैं और मुझे हमेशा उन्होंने अपने छोटे भाई कि तरह ही माना। यकीन मानो ऊपर कही गयी वो बात मुझसे भी कई बड़ों ने कही थी, शुरू में हर किसी कि तरह यही माना कि बड़े हैं सच ही बोल रहे होंगे। पर जब खुद से सोचा और समझा तो वो बात एक फेरेब और ज़हर से ज्यादा कुछ नहीं लगी। हमारे बड़े खुद बाज़ों हैं। इस बात को समझो। जो उन्होंने महसूस किया वो ज़रूरी नहीं कि तुम भी महसूस होती।

सुनी हुई हर बात को तसली से समझो और खुद को वक़्त देकर खुद फैसला करो। उनकी बताई हर बात को तसली से समझो और खुद को वक़्त देकर खुद फैसला करो।

'मुस्लिम आखिर में धोखा दे देते हैं'

जैसी बातें बहुत फ़ेरेबी हैं यार! .. तुम जब और मुस्लिमों से मिलोगे, उनसे बातें करोगे, दोस्ती करोगे तो तुम खुद बाज़ समझ जाओगे कि हम कितने बड़े झूठ को

दोस्त! बड़ों से झूठ बोला गया था .. बड़